इकाई 4 हिन्दी कहानी का उद्‌भव

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्‌देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 पृष्ठभूमि : मध्यकाल में गद्यकथा का विकास

4.3 हिन्दी कहानी के उद्‌भव के कारण या परिस्थितियाँ

4.4 हिन्दी कहानी के उद्‌भव में गद्य के विकास की भूमिका

4.5 हिन्दी गद्य कथा और उसके विकास में पाठक वर्ग की भूमिका

- 4.5.1 हिन्दी गद्य के विकास में मुद्रणयन्त्र की भूमिका
- 4.5.2 पाठक वर्ग के विकास में शिक्षा की भूमिका
- 4.5.3 अदालती भाषा के रूप में हिन्दी
- 4.5.4 हिन्दी समाचारपत्र और पाठक
- 4.5.5 उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी कथा–पुस्तकों का प्रकाशन

4.6 कहानी के विकास में पत्र–पत्रिकाओं की भूमिका

- 4.6.1 हिन्दी कहानी और 'सरस्वती'
- 4.6.2 हिन्दी में 'छोटी कहानी' का उद्‌भव और प्रारम्भिक रूप

4.7 सारांश

अभ्यास

4.0 उद्‌देश्य

एम. ए. हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित माड्‌यूल के पाठ्‌यक्रम 'कहानी : स्वरूप और विकास' से सम्बन्धित प्रथम खंड 'कहानी के सिद्धान्त और स्वरूप–1' की यह चौथी इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मध्यकाल में हिन्दी गद्य कथा के विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- हिन्दी कहानी के उद्‌भव के कारणों या परिस्थितियों से अवगत हो सकेंगे।
- 'कहानी' के उद्‌भव में गद्य के विकास की भूमिका से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- 'कहानी' के विकास में पाठक वर्ग की भूमिका से अवगत हो सकेंगे/सकेंगी।
- हिन्दी गद्य के विकास में मुद्रणयन्त्र की भूमिका से परिचत हो सकेंगे/सकेंगी।
- पाठक वर्ग के विकास में शिक्षा की भूमिका की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- अदालती भाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग से उसके विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।

- हिन्दी समाचार–पत्र और पाठक वर्ग के सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई से हम इस पाठ्यक्रम की शुरुआत करने जा रहे हैं। सबसे पहले हम मध्यकाल में गद्यकथा की स्थिति पर विचार करेंगे। उसके बाद हिन्दी कहानी के उद्‌भव के कारणों या परिस्थितियों पर विचार किया जाएगा। लिखित कथा के विकास के लिए हिन्दी गद्य का विकास जरूरी घटक था, जो औपनिवेशिक शासन और ईसाई धर्मप्रचारकों द्वारा हिन्दुस्तानी गद्य के विकास की आवश्यकता, मुद्रण तकनीक के आगमन आदि के फलस्वरूप सम्भव हुआ। इसी प्रकार कथा साहित्य के विकास के लिए एक पाठक–समूह की जरूरत थी, जो शिक्षा के विकास, सरकारी कार्यालयों और अदालतों में हिन्दी के प्रवेश, हिन्दी समाचार–पत्रों के विकास, साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रकाशन आदि के कारण अस्तित्व में आया। इन सारी परिस्थितियों के फलस्वरूप हिन्दी में पहले 'उपन्यास' का उद्‌भव हुआ। तत्पश्चात् 'कहानी' अस्तित्व में आयी। हिन्दी की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' में 'आख्यायिका' नाम से कहानियाँ प्रकाशित होनी शुरू हुईं। इस इकाई में हिन्दी में 'कहानी' के उद्‌भव और विकास के आरम्भिक दौर का परिचय दिया गया है।

4.2 पृष्ठभूमि : मध्यकाल में गद्यकथा का विकास

इस खंड की पहली इकाई में आपने देखा है कि बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' ने संस्कृत गद्य कथा को एक नया रूप दिया था। उसके बाद दंडी ने अपनी रचना 'दशकुमार चरित' द्वारा इस परम्परा को समृद्ध किया। पर बाणभट्ट और कादम्बरी के बाद कथा–रचना की यह परम्परा आगे नहीं बढ़ पायी। दसवीं सदी में धनपाल ने तिलकमंजरी के रूप में कादम्बरी की परम्परा को जीवित करने का प्रयत्न तो किया पर संरचना की दृष्टि से उसे भी कादम्बरी का विकास नहीं कहा जा सकता। इसका सबसे बड़ा कारण कदाचित् यह था कि इस समय तक आते–आते संस्कृत केवल राजदरबारों और पंडितों की भाषा रह गयी थी और चूँकि दसवीं शताब्दी के बाद धीरे–धीरे संस्कृत को राजाश्रय प्रदान करनेवाले हिन्दू राज्य समाप्त हो गये, इस कारण संस्कृत काव्य की परम्परा बहुत कमजोर हो गयी। संस्कृत के बाद फारसी केन्द्रीय सत्ता में आ गयी और काव्यरचना का माध्यम भी बनी। पर देश की आम जनता का लगाव न तो संस्कृत से था न फारसी से। इन्हीं परिस्थितियों में उत्तरी भारत की जन–बोलियाँ साहित्य की भाषा बनीं। उन्हें सूफियों और सन्तों–भक्तों का आश्रय मिला और काव्य–रचना का अभूतपूर्व विकास हुआ। इस विकास के मूल में उत्तर भारत की जनता का 'लोकाश्रय' था। पर गद्य के विकास के लिए जिस राजाश्रय की अपेक्षा होती है, उससे ये जन–भाषाएँ लगभग साढ़े सात सौ वर्षों तक वंचित रहीं। अठारहवीं शताब्दी में ब्रज भाषा और खड़ी बोली में 'योगवाशिष्ठ', 'वैतालपंचविंशति' और 'सिंहासनद्वात्रिंशतिका' आदि संस्कृत गद्य कथा पुस्तकों के रूपान्तर हुए और उनका लोक में प्रचार भी बहुत हुआ, पर कोई मौलिक गद्य कथा पुस्तक ब्रजभाषा या हिन्दी की किसी दूसरी घटक भाषा में नहीं लिखी गयी। कुछ कथा पुस्तकें, जैसे, 'दस अवतार भाषा'(1744), 'पद्मपुराण का भाषानुवाद' (1761), किस्सा चहार दरवेश का अनुवाद 'नौतर्जे मुरस्सा' (1798) आदि इस काल में लोकप्रिय हुई थीं। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व खड़ीबोली हिन्दी/हिन्दवी में केवल दो मौलिक गद्य कथा पुस्तकें, मुल्ला वजही कृत सबरस (1636) और सैयद इंशा अल्ला खाँ कृत 'रानी केतकी की कहानी' (ल.1800) उपलब्ध होती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, ऐतिहासिक

कारणों से, खड़ी बोली के आधार पर विकसित हिन्दी गद्य का विकास हुआ और उसके साथ ही 'गद्य कथा' भी नये अन्दाज में प्रकट हुई। इसी ने 'उपन्यास' और बाद में 'कहानी' का भी रूप ग्रहण किया।

4.3 हिन्दी कहानी के उद्‌भव के कारण या परिस्थितियाँ

यह तो आप जानती/जानते ही हैं प्रत्येक परिघटना में कार्य–कारण सम्बन्ध होता है। बिना कारण के कोई भी कार्य प्रकट नहीं होता। बीसवीं सदी के प्रथम दशक में हिन्दी में 'कहानी' जैसी विधा का उद्‌भव और विकास भी अकारण बिजली की चमक की तरह नहीं हो गया। इसके लिए लगभग पचास वर्षों से बादल इकट्ठे हो रहे थे ; परिस्थितियाँ निर्मित हो रही थीं, जो पहले उपन्यास और फिर 'कहानी' के उद्‌भव और विकास का कारण बनीं। इन परिस्थितियों में हिन्दी गद्य और उसके साथ–साथ पाठक–वर्ग का विकास प्रमुख था। हिन्दी गद्य और पाठक–वर्ग के निर्माण में मुद्रण–तकनीक के आगमन, शिक्षा के प्रसार, अदालती भाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकृति, समकालीन आर्थिक स्थिति, हिन्दी समाचारपत्रों के आगमन, तिलस्मी–जासूसी कथापुस्तकों के प्रकाशन आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। हिन्दी में साहित्यिक पत्रिकाओं के आरम्भ, बँगला में 'छोटो गल्प' के उदय, 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं के प्रकाशन से भी हिन्दी 'कहानी' के उद्‌भव और विकास को गति मिली। आगे हम इन कारणों अथवा परिस्थितियों का विवेचन करेंगे।

4.4 कथा–साहित्य के उद्‌भव में गद्य के विकास की भूमिका

हिन्दी कथा–साहित्य के उद्‌भव में गद्य के विकास की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। मध्यकाल में हिन्दी गद्य का विकास अवरुद्धप्राय रहा। इसका एक कारण, जैसा हम कह चुके हैं, हिन्दी का राज्याश्रय से वंचित रहना है। दूसरा कारण मध्यकाल में मुद्रणयन्त्र का प्रचलन में न आना भी है। यह बात ध्यान में रखने की है कि 'कहानी', जिसे अंग्रेजी में 'शॉर्ट स्टोरी' कहते हैं, साहित्य की प्रमुख विधाओं में सबसे आधुनिक है। इसके पहले उपन्यास (नॉवेल) का उदय हो चुका था। यह भी स्मरण रखने की बात है कि 'उपन्यास' और 'कहानी' एक ही प्रजाति की विधाएँ हैं और इनके उद्‌भव और विकास की परिस्थितियाँ समान हैं। उपन्यास के उदय और विकास के लिए जो परिस्थितियाँ अपेक्षित थीं वे उन्नीसवीं सदी के पहले अस्तित्व में नहीं आयी थीं।

पाठक उपन्यास/कहानी की बुनियादी ज़रूरत है। इनकी प्रमुख पहचान पाठ्य होना ही है। यद्यपि 'कहानी' विशेष अवसरों पर पढ़कर सुनायी भी जाती है, पर वह उसका स्वभाव नहीं है। इस अर्थ में वह परम्परागत कथा या कहानी से भिन्न है। उपन्यास/कहानी के उद्‌भव और विकास के लिए जरूरी बुनियादी संरचना के रूप में गद्य का विकास और मुद्रण–यन्त्र का आविष्कार आवश्यक था। यूरोप में तेरहवीं शताब्दी में मुद्रण यन्त्र का आविष्कार हुआ, जिससे गद्य के विकास में अभूतपूर्व तेजी आयी। सामन्तवाद के स्थान पर पूँजीवाद के उदय का भी समय लगभग यही है। पूँजीवाद के साथ मध्यवर्ग का भी विकास हुआ, जिसने अपनी विशालता और बौद्धिक जागरूकता के कारण विशाल पाठक वर्ग का भी रूप ले लिया। चौदहवीं–पन्द्रहवीं शताब्दी में यूरोप में मध्यवर्गीय पाठक–वर्ग पैदा हो गया था, जिसने वहाँ उपन्यास के उदय के लिए बुनियादी संरचना के निर्माण में योग दिया। फलस्वरूप सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व ही यूरोप में 'उपन्यास' अस्तित्व में आ गया।

4.5 हिन्दी गद्य कथा और उसके विकास में पाठक वर्ग की भूमिका

यह तो आप जान ही चुके/चुकी हैं कि आरम्भ में 'कथा' सुनाने–सुनने की चीज थी। जब 'कथा' गद्य में लिखी जाने लगी तो वह श्रव्य के साथ साथ पाठ्य होने लगी। मुद्रणयन्त्र के आगमन के बाद 'कथा' श्रव्य कम और पाठ्य अधिक होने लगी। मुद्रण तकनीक के विकास के चलते पुस्तकें सस्ती और आसानी से उपलब्ध होने लगीं तो 'कथा' अधिकतर पाठ्य ही हो चली। शिक्षा के प्रसार, हिन्दी के प्रचार–प्रसार के प्रति आयी जागरूकता, अदालतों में हिन्दी के प्रवेश, पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन आदि से पाठक–वर्ग का प्रसार होने लगा। भारत में इस प्रकार की परिस्थितियाँ औपनिवेशिक शासन के बाद निर्मित हुईं। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर लगभग आगामी सात दशकों तक हिन्दी पाठकवर्ग के निर्माण की प्रक्रिया बहुत धीमी रही और उपन्यास एक विधा के रूप में लगातार दस्तक देता रहा। आलंकारिक भाषा में यह भी कहा जा सकता है कि वह लगभग सत्तर वर्ष तक परिस्थितियों के गर्भ में कुलबुलाता रहा और 1870 ई. में 'देवरानी जेठानी की कहानी' के रूप में प्रकट हुआ। इसके लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व बँगला और मराठी में उपन्यास का जन्म हो चुका था। बँगला और हिन्दी में उसे 'उपन्यास', उर्दू में 'नाविल', मराठी में 'कादम्बरी' तथा गुजराती में 'नवल कथा' की संज्ञा प्राप्त हुई। 'कहानी'–लेखन का आरम्भ पहले बँगला में 'छोटो गल्प' के नाम से हुआ। वस्तुतः यह नाम अँगरेजी की 'शॉर्ट स्टोरी' का ही रूपान्तर था। हिन्दी में 'कहानी' का आरम्भ 'आख्यायिका' नाम से हुआ, पर बाद में उसके लिए 'कहानी' पद ही स्वीकृत हुआ।

कथा के उपन्यास/कहानी में रूपान्तरण की कतिपय अनिवार्य शर्तों में इसका लिखित गद्य कथा होना जरूरी था। हिन्दी क्षेत्र में 'मौखिक गद्य कथा' का अस्तित्व तो सदियों से था, पर 'लिखित' रूप में उसका प्रचलन बहुत कम था। ब्रजभाषा, हिन्दी (हिन्दवी) और राजस्थानी में लिखित गद्यकथाओं की एक क्षीण सी परम्परा अवश्य विद्यमान थी पर उसका सम्बन्ध भी पाठक से उतना नहीं था जितना 'श्रोता' से। जैसा पहले कहा जा चुका है, श्रोता के पाठक बनने की प्रमुख शर्त व्यक्ति का पठन–योग्यता से सम्पन्न होना है। मुद्रित पुस्तकों की उपलब्धता भी पाठक समूह के निर्माण से अनिवार्यतः जुड़ी हुई है। ये सारी परिस्थितियाँ अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक भारत में, विशेषतः हिन्दी क्षेत्र में, नहीं थीं। यद्यपि अँगरेजों के शासन के पूर्व हिन्दी क्षेत्र में शिक्षा का अभाव न था पर इस शिक्षा में माध्यम या विषय के रूप में 'हिन्दी' का स्थान नगण्य था। सरकारी कामकाज की भाषा फारसी थी, अतः जीविका के लिए लोग फारसी भाषा और लिपि की शिक्षा को ही महत्त्व देते थे। धर्म भावना और उसकी जरूरतों के कारण देवनागरी जीवित तो थी, पर व्यावहारिक जीवन में उसका कोई महत्त्व न था। कथाएँ मनोरंजन या शिक्षा के लिए सुनी–सुनायी जाती थीं। सामान्य आदमी इतना सक्षम नहीं था कि हस्तलिखित कथापुस्तकें उसे सुलभ होतीं। बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी, सबरस आदि सत्रहवीं शताब्दी में लिखी जा चुकी थीं पर उन तक बहुत कम लोगों की पहुँच थी। वे राजाओं, नवाबों या बहुत से बहुत बड़े ज़मींदारों की हवेलियों तक ही पहुँच पाती थीं। सामान्य आदमी तो उन्हें 'सुनता' ही था ; भले ही सामूहिक रूप से कोई कथावाचक उन पोथियों को पढ़ कर सुनाता हो।

4.5.1 हिन्दी गद्य के विकास में मुद्रणयन्त्र की भूमिका

उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार 1667 ई. में रोम से प्रकाशित अथानासी किर्चेरी कृत 'चाइना.

.. इलस्ट्रेटा' नामक लैटिन किताब सर्वप्रथम देवनागरी लिपि में मुद्रित हुई थी। 1745–58 ई.के बीच शूल्त्स का बाइबिल का हिन्दी अनुवाद हाल (Halle) में छपा था। पर हिन्दी में पुस्तकों के मुद्रण का वास्तविक आरम्भ 19वीं शताब्दी के प्रथम दशक में हुआ। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता में अंग्रेजी पदाधिकारियों को हिन्दुस्तानी और हिन्दी की शिक्षा देने की योजना का आरम्भ हुआ। इसके लिए पुस्तकों की जरूरत थी। बाद में प्राथमिक स्कूलों के पाठ्यक्रम के लिए उपयोगी ज्ञान की पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए स्कूल बुक सोसाइटी की स्थापना हुई। फोर्ट विलियम कॉलेज में यद्यपि 'हिन्दी' की अपेक्षा 'हिन्दुस्तानी' या उर्दू को वरीयता मिली हुई थी, पर हिन्दुस्तानी की पुस्तकें देवनागरी में भी मुद्रित होती थीं। कॉलेज के पाठ्यक्रम की पुस्तकें मुद्रित करने के लिए गिलक्राइस्ट का हिन्दुस्तानी प्रेस तो था ही अन्य निजी नागरी मुद्रणालयों से भी सहायता ली जाती थी। इस प्रकार फोर्ट विलियम कॉलेज से नागरी मुद्रण को बहुत प्रोत्साहन मिला। स्कूल बुक सोसाइटियों के लिए छपने वाली पुस्तकों के मुद्रण से भी नागरी मुद्रण के प्रसार को बल मिला।

1810 ई. में अथवा उसके कुछ पूर्व लल्लूलालजी ने कलकत्ता में संस्कृत प्रेस की स्थापना की थी, जहाँ से 1810 ई. में प्रेमसागर, 1811ई. में 'ब्रजभाषा व्याकरण' और 1817 ई. में 'माधव विलास' नामक पुस्तकें छपी थीं। इन पुस्तकों के अतिरिक्त लल्लूलालजी ने तुलसी दास, बिहारी, नरोत्तम दास, ब्रजवासी दास आदि की पुस्तकें भी पहली बार छापी थीं। सन् 1818ई. में श्रीरामपुर के मिशनरियों का बैप्टिस्ट मिशन प्रेस कलकत्ता में स्थापित हुआ, जहाँ से स्कूल बुक सोसाइटी के लिए हिन्दी में पचासों पुस्तकें छपीं। 1825 ई. तक कलकत्ता में स्कूल बुक सोसाइटी का अपना प्रेस भी खुल चुका था। 1827 ई. में अथवा उसके कुछ पूर्व कलकत्ता में 'द एजुकेशन प्रेस' की स्थापना हुई थी।

सन् 1832 ई. के आस–पास, हिन्दी क्षेत्र में, बनारस टकसाल प्रेस और कानपुर लीथो प्रेस से रामचरित मानस के प्रकाशित होने का पता चलता है। सन् 1834. से 1856. के बीच कलकत्ता, लुधियाना, आगरा, मिर्जापुर, सिकन्दरा, बनारस, इलाहाबाद आदि शहरों में दशाधिक प्रेस स्थापित हुए थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दी मुद्रणालयों और उनमें प्रकाशित पुस्तकों पर सरसरी नजर डालने से स्पष्ट हो जाता है कि इस काल के मुद्रणालयों की स्थापना सामान्य हिन्दी पाठकों की माँग पर नहीं हुई थी। वस्तुतः इस काल में हिन्दी पाठक वर्ग अस्तित्व में आया ही नहीं था। ये प्रेस मुख्यतः ईसाई मिशनरियों के धर्मप्रचार के निमित्त खुले थे। ईसाई पादरी भारतीयों में अपने धर्मग्रन्थ बाइबिल का प्रचार करना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने भारत की प्रायः सभी भाषाओं में टाइप तैयार करने तथा प्रेस खोलने के प्रयत्न किए थे। 1850 ई. के पूर्व के अधिकांश हिन्दी मुद्रणालय ईसाई मिशनरियों द्वारा ही स्थापित किए गये थे।

इस काल में प्रेस खोलने वालों का ध्यान सामान्य हिन्दी पाठकों की तरफ बिलकुल ही न गया हो, ऐसी बात नहीं। लल्लूलालजी ने अपने मुद्रणालय से तुलसी, बिहारी, नरोत्तम दास, ब्रजवासी दास आदि के काव्यग्रन्थ छापे थे तथा 1832 ई. के लगभग बनारस और कानपुर से रामचरित मानस का मुद्रण हुआ था। 1846 ई. में कलकत्ता के काश्मीरी यन्त्रालय से कहानी 'रानी केतकी' की छपी थी। इससे काफी पहले किसी मुंशी हरीराम पंडित ने 'रानी केतकी' की कहानी देवनागरी लिपि में छापी थी। इन प्रकाशनों के फलस्वरूप हिन्दी के श्रोता–समुदाय के पाठक–समुदाय में रूपान्तरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई। 1850 ई. के बाद ईसाई धर्म–प्रचारकों की प्रतिक्रिया में हिन्दुओं की तरफ से भी धर्म

प्रचार के आन्दोलन शुरू हुए जिसके फलस्वरूप नागरी मुद्रण को बहुत प्रोत्साहन मिला। स्कूली किताबें छापने के लिए भी नागरी मुद्रणालय खुलते रहे। पर सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि सामान्य पाठकों की रुचि की पुस्तकें छापने के लिए व्यावसायिक स्तर पर प्रेसों की स्थापना हुई। इनमें सबसे बड़ा और साधनसम्पन्न प्रेस 'नवल किशोर प्रेस', लखनऊ (1858) ई. था जिसने फारसी और देवनागरी दोनो लिपियों में उर्दू दास्तान की बड़ी–बड़ी पुस्तकों के अतिरिक्त संस्कृत पुराणों के हिन्दी–उर्दू अनुवाद भी प्रकाशित किए। चूँकि इस काल का हिन्दू मध्यवर्ग अधिकतर उर्दू–फारसी पढ़ता था। अतः उसे श्रोता से पाठक बनाने में नवल किशोर प्रेस से छपे पुराणों और उर्दू दास्तान की पुस्तकों ने क्रान्तिकारी भूमिका अदा की। नवल किशोर प्रेस से ही प्रेरणा प्राप्त कर 1859 ई. से 1870 ई. के बीच बनारस, मथुरा, आगरा, फतेहगढ़ तथा कलकत्ता में दशाधिक हिन्दी मुद्रणालय स्थापित हुए।

4.5.2 पाठक वर्ग के विकास में शिक्षा की भूमिका

जैसा कहा जा चुका है, पाठक वर्ग के निर्माण के लिए शिक्षा मूलभूत आधार है। भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के पूर्व, शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार, सभी स्तर की हिन्दू और मुस्लिम शिक्षण संस्थाओं का जाल फैला हुआ था। जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है, उत्तर भारत में हिन्दी और फारसी की शिक्षा देने वाले स्कूलों की अधिकता थी। पर ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन ने देशी पद्धति के इन स्कूलों को प्रायः नष्ट कर दिया। कम्पनी शासन ने कभी भी भारतीयों की शिक्षा के प्रति उत्साह नहीं दिखाया। 1823 ई. तक शिक्षा के विकास के सम्बन्ध में कोई भी ठोस कार्य नहीं हुआ। 1822–33 ई. की अवधि में कम्पनी के उत्तरदायी पदाधिकारियों के जोर देने पर शिक्षा के क्षेत्र में कुछ विकास हुआ, पर प्राथमिक शिक्षा या जन शिक्षा की बिलकुल ही उपेक्षा होती रही। इस कारण जनता में निरक्षरता की मात्रा दिनोदिन बढ़ती ही गई। सरकार की तुलना में ईसाई मिशनरियों ने इस अवधि में जन–शिक्षा के विकास की दिशा में अधिक प्रयत्न किए पर उनका कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से अहिन्दी भाषी क्षेत्र था। फिर भी 1813–31 ई. में आगरा, मेरठ, बनारस, आजमगढ़ और जौनपुर में ईसाई मिशनरियों ने अपने प्रचार केन्द्र स्थापित किये और इन स्थानों पर उन्होंने स्कूल खोले। इन धर्मप्रचारकों ने आधुनिक भारतीय भाषाओं को महत्त्व दिया, क्योंकि ये निम्नस्तरीय समाज के बीच काम करते थे, जो अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त और कोई भाषा नहीं जानता था।

1833 ई. के चार्टर ऐक्ट से भाषा के सम्बन्ध में कम्पनी शासन की नीयत साफ हो गयी। इसका उद्‌देश्य सरकारी कामकाज और शिक्षा में अंग्रेजी का एकाधिपत्य स्थापित करना था। 1835 के संकल्प में विलियम बेन्टिक ने मेकॉले के सभी सुझाओं को स्वीकार कर लिया और इस प्रकार क्षेत्रीय भाषाओं के विकास का मार्ग अनिश्चित काल के लिए अवरुद्ध हो गया। मैकाले की अध्यक्षता में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार का कार्य तेजी से बढ़ा। यद्यपि इन स्कूलों में देशी भाषा की पढ़ाई की व्यवस्था थी, पर वह नाम मात्र की और केवल दिखाने के लिए थी।

लगभग इसी समय, हिन्दी के दुर्भाग्य से, 1837 ई. में अदालती भाषा सम्बन्धी अधिनियम स्वीकृत हुआ जिससे अदालतों में उर्दू का धीरे–धीरे एकाधिपत्य स्थापित हो गया। मुस्लिम समुदाय का प्रभावशाली वर्ग इस बात की भी कोशिश करता रहा कि स्कूलों के पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान न मिले। अंग्रेज पदाधिकारियों की साठगाँठ से इसमें उन्हें सफलता भी मिल गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि 1850 ई. तक आते–आते हिन्दी में शिक्षा प्राप्त करने वाले युवकों की संख्या नगण्य हो गयी। इस स्थिति में हिन्दी पाठक–वर्ग की कोई कल्पना करना भी बहुत दूर की बात है।

1854 के 'वुड्स डिस्पैच' के बाद शिक्षा की स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ। इसके बाद शिक्षा प्रसार का कार्य तेजी से बढ़ा पर माध्यमिक विद्यालयों में आधुनिक भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने तथा उनके 'सावधानीपूर्वक अध्ययन' सम्बन्धी 'डिस्पैच' के सुझाव की सरकार ने उपेक्षा कर दी। मिडिल और माध्यमिक स्कूलों में, विषय के रूप में, आधुनिक भारतीय भाषाओं की पढ़ाई नाममात्र को ही होती थी। उसमें भी उर्दू की तुलना में हिन्दी उपेक्षित थी। सरकारी कार्यालयों तथा अदालतों में उर्दू का एकाधिपत्य रहने के कारण अभिभावक अपने बच्चों को उर्दू पढ़ाना ही पसन्द करते थे। इन सब कारणों से 1869 ई. में मिडिल की परीक्षा में उर्दू और हिन्दी विषय लेने वालों का अनुपात चार : एक था। जाहिर है कि 'डिस्पैच' से हिन्दी पाठक वर्ग के निर्माण में कोई सहायता नहीं मिली।

'वुड्स डिस्पैच' के प्रकाशित होने के बाद सरकार ने स्त्री–शिक्षा को प्रोत्साहन देने की सक्रिय नीति अपनायी। इस नीति के परिणामस्वरूप 1871 ई. तक लड़कियों के लिए समस्त देश में 1760 ई. प्राथमिक और 134 माध्यमिक स्कूल खुले। इन स्कूलों में पढ़ाने के लिए नये ढंग की पुस्तकें लिखी गयीं। पं. गौरीदत्त रचित 'देवरानी जेठानी की कहानी' (1870) ई. एक ऐसी ही पुस्तक थी, जिसे हिन्दी का पहला उपन्यास होने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।

4.5.3 अदालती भाषा के रूप में हिन्दी

शिक्षण संस्थाओं में ही नहीं, सरकारी कार्यालयों और अदालतों में भी हिन्दी उपेक्षित थी। दरअसल कम्पनी शासन को राजकीय भाषा के रूप में फारसी और उर्दू की ही विरासत प्राप्त हुई थी। 1836 ई. तक फारसी ही कम्पनी शासन की राजभाषा रही। मुगल शासन के अन्तिम दिनों में शासन की लिखित भाषा के रूप में फारसी का और बोलचाल की भाषा के रूप में उर्दू का प्रयोग होता था। इसे ही जॉन गिलक्राइस्ट 'हिन्दुस्तानी' कहते थे और अँग्रेज पदाधिकारियों के लिए इसका ज्ञान जरूरी समझा गया था।

मुगल शासन में, विशेष कर उसके अन्तिम दिनों में, प्रशासन से जुड़े मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच 'हिन्दुस्तानी' या उर्दू का खूब प्रचार था, पर शेष जनता, जिसकी संख्या निश्चित ही बहुत अधिक थी, हिन्दी परिवार की विभिन्न भाषाएँ और बोलियाँ बोलती थी। शासनकार्य से सम्बन्धित न होने के कारण हिन्दी और हिन्दुस्तानी दोनों में लिखित गद्य का अपेक्षित विकास नहीं हो पाया था, पर बोलचाल की भाषा के रूप में शहरों और व्यापार–मंडियों में मौखिक गद्य का विकास हो चुका था।

कम्पनी शासन ने राजनीतिक कारणों से 'हिन्दुस्तानी' या उर्दू को ही अधिक महत्त्व दिया। 21 दिसम्बर, 1798 ई. को सरकारी सूचना द्वारा यह घोषणा की गयी थी कि 1 जनवरी, 1801 के बाद भारतीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किए बिना तथा तत्सम्बन्धी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए बिना सिविल सर्विस का कोई भी कर्मचारी किसी भी पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता। पर कम्पनी के शासक समझते थे कि बिहार तथा बनारस की सामान्य जनता की भाषा हिन्दुस्तानी या उर्दू थी। भाषा सम्बन्धी यह भ्रम बहुत दिनों तक अंग्रेज अधिकारियों के मन में बना रहा। 1800 ई. में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई, जिसमें देश की कई भाषाओं के साथ 'हिन्दुस्तानी' के अध्ययन के लिए प्रोफेसर नियुक्त करने का निश्चय किया गया। पर कॉलेज में 'हिन्दी' का अध्यापन आवश्यक नहीं समझा गया। आरम्भ में लल्लूलालजी भी, जो 'हिन्दी मुंशी' थे, रेख्ता या हिन्दुस्तानी में ही ग्रन्थों के अनुवाद करते थे।

धीरे–धीरे गिलक्राइस्ट तथा कम्पनी के अधिकारियों को इस बात का बोध होने लगा कि 'हिन्दुस्तानी' या 'रेख्ता' बिहार तथा 'अपर प्रोविन्सेज' के आम लोगों की भाषा नहीं है। पर 1815 ई. तक कॉलेज में गिलक्राइस्ट की भाषा–नीति का ही अनुकरण होता रहा। बाद में विलियम प्राइस ने कॉलेज के पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान दिलाने में सफलता प्राप्त की। पर उसी समय कॉलेज का अस्तित्व संकटग्रस्त हो गया और 1854 ई. में वह बिलकुल ही बन्द कर दिया गया। फलतः हिन्दी गद्य को फोर्ट विलियम कॉलेज का वह लाभ नहीं मिला जो उर्दू और बँगला को प्राप्त हुआ।

जहाँ तक दफ्तरों की भाषा का प्रश्न है, 1836 ई. में फारसी के स्थान पर अंग्रेजी सरकारी भाषा घोषित की गयी पर साथ ही यह आदेश भी निकाला गया कि सभी अदालती काम देश की भाषाओं में हुआ करें। 1837 ई. में अदालती भाषा सम्बन्धी अधिनियम लागू होने पर हिन्दी, हिन्दी क्षेत्र की अदालती भाषा स्वीकृत की गयी, पर मुसलमानों तथा हिन्दू वकीलों और मुंशियों के निहित स्वार्थ तथा सरकार की उदासीनता के कारण बिहार तथा अपर प्रोविन्सेज की अदालतों में उर्दू का एकाधिपत्य कायम हो गया। इसके पहले कम से कम नागरी लिपि का प्रयोग सरकारी कामों में होता था। पर इस अधिनियम के लागू होने के बाद अदालतों में नागरी लिपि बिलकुल ही उपेक्षित होने लगी। सन् 1837 ई. के बाद हिन्दुस्तानी या उर्दू भाषा ने जो रूप ग्रहण किया उसमें अरबी–फारसी शब्दों का और भी बाहुल्य हो गया। फारसीदाँ कर्मचारी जिस हिन्दुस्तानी का प्रयोग करते थे उस पर फारसी शब्दावली, मुहावरों और शैली का रंग बहुत ज्यादा होता था। इस पर अंकुश लगाने के लिए सरकार की तरफ से भाषा सम्बन्धी संशोधन के आदेश आते रहते थे, पर उनका कार्यान्वयन नहीं हो पाता था। 1837 ई. के पूर्व 'हिन्दुस्तानी' के लिए नागरी लिपि का भी प्रयोग होता था। पर 1850 ई. के लगभग 'हिन्दुस्तानी' केवल फारसी लिपि में लिखी जाने लगी। लगभग 1850 ई. तक अदालतों और सरकारी कार्यालयों में उर्दू का ही आधिपत्य बना रहा। सातवें दशक में हिन्दी जनता का नागरी लिपि विषयक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। पंजाब में बाबू नवीनचन्द्र राय, बिहार में भूदेव मुखोपाध्याय, उत्तर प्रदेश में शिवप्रसाद सितारेहिन्द आदि के नेतृत्व में यह आन्दोलन प्रबल हुआ जिसका समर्थन एफ. एस. ग्राउस, सैयद अब्दुल्ला, हेनरी पिंकॉट आदि ने भी किया। पर इस सबका हिन्दी पाठक वर्ग के निर्माण पर प्रभाव बाद में ही चल कर दिखाई दिया।

4.5.4 हिन्दी समाचारपत्र और पाठक वर्ग

उन्नीसवीं शताब्दी में उत्तरी भारत के आम जन की शैक्षिक–आर्थिक स्थिति को देखते हुए पाठक वर्ग की कल्पना करना कठिन है। इस बीच हिन्दी में जो समाचारपत्र प्रकाशित हुए वे बहुत अल्पायु होते थे। हिन्दी का पहला समाचारपत्र 'उदन्त मार्तण्ड' पाठकों के अभाव में केवल डेढ़ वर्ष चल पाया। इसके सम्पादक पं. जुगुल किशोर शुक्ल को इसे निकालने के लिए घोर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। 'उदन्त मार्तण्ड' के बाद 'बंगदूत' (1829)प्रकाशित होना शुरू हुआ पर उसकी भी 11–12 संख्याएँ ही प्रकाशित हो पायीं। इसके बाद 1845 ई. तक हिन्दी में कोई समाचारपत्र प्रकाशित नहीं हुआ। सन् 1845 ई. में शिवप्रसाद (सितारेहिन्द) के संरक्षण में 'बनारस अखबार', 1846 में कलकत्ता से 'मार्तण्ड या इंडियन सन' और 'ज्ञानदीप', 1848 में इन्दौर से 'मालवा अखबार', 1849 में कलकत्ता से 'जगद्दीपक भास्कर' आदि हिन्दी समाचारपत्र स्वतन्त्र रूप से अथवा अन्य कई भाषाओं के साथ प्रकाशित हुए, पर इनमें से कोई भी अधिक दिनों तक नहीं चल सका। इनकी तुलना में उर्दू पत्रों की स्थिति बेहतर थी जिससे यह अनुमान करना निराधार न होगा कि उर्दू पाठक वर्ग, जिसमें हिन्दू–मुसलमान दोनों शामिल थे, हिन्दी की तुलना में बड़ा था।

सन् 1850 ई. के बाद हिन्दी पत्रों के प्रसार में कुछ तेजी आती दिखाई देती है। अगले बीस वर्षों में 'सामदंड मार्तण्ड', 'प्रजाहितैषी', 'धर्म प्रकाश', 'तत्त्वबोधिनी पत्रिका', 'सत्यदीपक" आदि हिन्दी पत्र प्रकाशित हुए। इस अवधि में 'सुधाकर', 'बुद्धिप्रकाश', 'पयामे आजादी', 'लोकमित्र' आदि पत्र भी निकले जो नागरी लिपि में छपते थे, पर जिनकी भाषा 'हिन्दुस्तानी 'थी। 1852–67 के बीच' प्रकाशित मजहरुलसरकार', 'ग्वालियरगजेट', 'सर्वहितकारक', 'सूरजप्रकाश', 'भारतखंडामृत', 'ज्ञानप्रदायिनीपत्रिक', 'रतन प्रकाश', 'विद्याविलास' आदि हिन्दी–उर्दू के द्विभाषिक पत्र थे। 'समाचार सुधावर्षण'(1854) हिन्दी का पहला दैनिक पत्र था जो हिन्दी और बँगला में प्रकाशित होता था।

इन पत्रों में भारतेन्दु बाबू द्वारा प्रकाशित 'कविवचनसुधा' (1867) का विशेष महत्त्व है। इसके बारे में अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है कि ''यद्यपि हिन्दी भाषा के प्रेमी उस समय बहुत कम थे, तो भी हरिश्चन्द्र के ललित लेखों ने लोगों के जी में ऐसी जगह कर ली थी कि कवि वचन सुधा के हर नम्बर के लिए लोगों को टकटकी लगाए रहना पड़ता था। इससे यह अनुमान करना असंगत न होगा कि हिन्दी के पाठकों की संख्या में थोड़ी बहुत वृद्धि हो रही थी। कुछ बाद में चलकर हिन्दी में 'बिहार बन्धु', 'हिन्दी प्रदीप', 'सारसुधानिधि', 'ब्राह्मण' आदि साहित्यिक पत्र प्रकाशित होने शुरू हुए जिन्होंने हिन्दी पाठक–वर्ग के विकास में योग दिया। पर पाठक–वर्ग के विकास में सर्वाधिक योगदान देवकीनन्दन खत्री द्वारा प्रकाशित 'साहित्य लहरी' तथा गोपालराम गहमरी और किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा प्रकाशित क्रमशः 'जासूस' और 'उपन्यास' आदि पत्रिकाओं ने किया, जिनमें तिलस्मी, जासूसी और रूमानी कथाएँ प्रकाशित होती थीं। बीसवीं शताब्दी में प्रकाशित 'सरस्वती', 'छत्तीसगढ़ मित्र', 'सुदर्शन', 'वैष्योपकारक', 'इन्दु', 'मर्यादा' आदि मासिक पत्रिकाओं का हिन्दी कहानी के विकास में अभूतपूर्व योगदान है।

4.5.5 उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी कथा–पुस्तकों का प्रकाशन

नागरी लिपि में जिन प्रारम्भिक कथा–पुस्तकों के प्रकाशन का पता चलता है, उनमें 'बैताल पचीसी', 'सिंहासनबत्तीसी', 'प्रेम सागर', 'राजनीति और चन्द्रावती' वा नासिकेतोपाख्यान उल्लेखनीय हैं। इन कथा–पुस्तकों की भाषा की पहचान के सम्बन्ध में थोड़ा बहुत मतभेद है, पर मोटामोटी रूप से उसे हिन्दी मानने में कोई विरोध नहीं है। ध्यान देने की बात है कि ये कथा–पुस्तकें सामान्य कथा–प्रेमी पाठकों के लिए नहीं––ऐसे पाठक उस समय थे भी नहीं––बल्कि हिन्दी सीखनेवाले अंग्रेज पदाधिकारियों के लिए मुद्रित करायी गयी थीं, जिनका मूल्य समकालीन हिन्दुस्तानियों की क्रयशक्ति को देखते हुए बहुत ज्यादा था। सिंहासन बत्तीसी का मूल्य प्रति पुस्तक सोलह रुपये और 'बैताल पचीसी' का मूल्य प्रति पुस्तक तेरह रुपये रखा गया था, जो उस जमाने में बहुत बड़ी रकम थी। ये पुस्तकें सरकार द्वारा खरीदी जाती थीं और हिन्दी सीखने वाले सिविल सर्विस के कर्मचारियों को उपलब्ध करायी जाती थीं। यह स्थिति लगभग 1850 ई. तक बनी रही। सामान्य पाठकों को ध्यान में रख कर 'बैताल–पचीसी' का पहला मुद्रण सम्भवतः 1839 में हुआ था। 'सिंहासन बत्तीसी' के विभिन्न संस्करणों के प्रकाशन काल से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसे 1840 ई. के बाद पाठकों में विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई। 1840–70 ई. की अवधि में 'सिंहासन बत्तीसी' के कम से कम तेरह और 1870–80 के बीच कम से कम चौदह संस्करण प्रकाशित हुए। बैताल पचीसी को भी 1840 के बाद ही सामान्य पाठकों के बीच लोकप्रियता प्राप्त हुई। 1840 और 1870 के बीच इसके कम से कम इक्कीस संस्करण उपलब्ध होते हैं, जबकि इसके पूर्व इसके केवल दो ही संस्करण प्रकाशित हुए थे।

हिन्दी की एक बहुत ही उल्लेखनीय कथा पुस्तक सैयद इंशा अल्ला खाँ रचित 'रानी केतकी की कहानी' है, जो लिखी तो 1803 ई. के आसपास गयी थी, पर प्रथम बार मुद्रित हुई 1847 ई. के 'बहुत दिन पहिले' किसी पं. हरीराम द्वारा। यह सूचना इसके दिसम्बर, 1846 के द्वितीय मुद्रण के अन्त में दी गयी है। इस सूचना में यह भी बताया गया है कि ''बहुत लोगों को ठेठ हिन्दी बोली में इन दिनों कहानी पढ़ने की चाह रहती है।'' इससे यह अनुमान करना संगत है कि 1850 ई. तक हिन्दी पाठक–वर्ग के निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। 1850 के बाद हिन्दुस्तानी समाचारपत्रों की संख्या में वृद्धि से भी इसकी पुष्टि होती है। 1850–1880 की अवधि में 'रानी केतकी की कहानी' के हिन्दी पाठकों में लोकप्रिय होने के अन्य प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं।

'रानी केतकी की कहानी' यद्यपि हिन्दी की पहली मौलिक, लिखित और मुद्रित गद्य कथा है, पर यह आधुनिक अर्थ में न 'उपन्यास' है, न 'कहानी'। यह मध्यकालीन सूफी प्रेमाख्यानों की पद्धति पर रचित गद्य कथा है, जिसमें अतिलौकिक तत्त्वों, फारसी कथानक रूढ़ियों तथा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों से भरी एक प्रेम कहानी है। कथा के बीच बीच में सूफी प्रेमाख्यानों की शैली पर नायिका के नख–शिख सौन्दर्य तथा वैवाहिक तैयारियों का अतिश्योक्तिपूर्ण और वस्तुपरिगणनात्मक वर्णन मिलता है। समकालीन जीवन के यथार्थ से, जो उपन्यास/कहानी की प्रथम पहचान है, इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। रानी केतकी की कहानी (1803) से लेकर 1869 ई. तक हिन्दी में कोई दूसरी मौलिक गद्य कथा नहीं लिखी गयी। फोर्ट विलियम कॉलेज से प्रकाशित सभी गद्य कथा पुस्तकें––बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी , प्रेम सागर आदि–– अनुवाद थीं।

प्रेम सागर का मुद्रण भी पहले पाठ्य–पुस्तक के रूप में ही हुआ था और उसकी कीमत तेरह रुपये रखी गयी थी। 1850 ई. तक 'प्रेम–सागर' सामान्य जनता के बीच नहीं पहुँचा था। पर बाद में, विशेष रूप से 1869 ई. के बाद, कलकत्ता, बम्बई, पटना, दिल्ली, मेरठ, आगरा, प्रयाग, काशी आदि स्थानों से इसके अनेक संस्करण सामान्य पाठकों की माँग पर प्रकाशित हुए।

सामान्य पाठकों के लिए अनूदित कथापुस्तकों के प्रकाशन का प्रचलन भी 1840 ई. के लगभग आरम्भ हुआ। 1838–59 ई. की अवधि में किस्सा हातिमताई, कथासार, मनोरंजन इतिहास, किस्सा चहारदरवेश, सूरजपुर की कहानी, धर्मसिंह का वृत्तान्त, वीर सिंह का वृत्तान्त, वामा मनरंजन, शुक बहत्तरी, लड़कों की कहानी आदि कथा पुस्तकें प्रकाशित हुईं और तत्कालीन पाठकों के बीच लोकप्रिय भी हुईं। 1860 ई. में डेनियल डीफो कृत रॉबिन्सन क्रूसो का पं. बदरीलाल कृत राबिन्सन क्रूसो का इतिहास प्रकाशित हुआ जो हिन्दी का पहला अनूदित उपन्यास कहा जा सकता है। यह अनुवाद अंग्रेजी से नहीं, बल्कि बँगला से किया गया था और हिन्दी पाठकों के बीच पर्याप्त लोकप्रिय भी हुआ था। सन् 1867 ई. में जॉन बन्यन कृत 'पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस' का 'यात्रा स्वप्नोदय' शीर्षक अनुवाद प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद ईसाई पादरियों द्वारा धर्मप्रचारार्थ प्रस्तुत किया गया था और इसके कई संस्करण हुए थे। 1868 ई. में उर्दू से गुलबकावली का अनुवाद प्रकाशित हुआ, जो बाद में हिन्दी पाठकों में बहुत लोकप्रिय हुआ।

1861–70 के दशक में नल प्रसंग, नया काशीखंड, राजदूतों की कथा, फूलमणि और करुणा का वृत्तान्त, शनैश्चर जी की कथा, सिकन्दरशाह पातशाह के शहजादे रमनशाह का किस्सा, प्रह्लाद चरित, बुद्धि फलोदय, कृष्ण जन्म खंड, हिन्दी सलेक्शन्स, रामाश्वमेध, तीन देवों की कहानी आदि अनूदित कथापुस्तकें प्रकाशित हुईं। इसी झाड़झंखाड़ के बीच 1870 ई. में 'देवरानी जेठानी की कहानी' (पं गौरीदत्त) के रूप में एक नया फूल खिला,

जो हिन्दी उपन्यास का आरम्भ बिन्दु सिद्ध हुआ। ध्यान रखें कि शीर्षक में 'कहानी' शब्द होने पर भी यह आधुनिक अर्थ में 'कहानी' नहीं है।

'देवरानी–जेठानी की कहानी' की रचना 'उपन्यास' के रूप में नहीं, बल्कि बालिकाओं के लिए उपयोगी पाठ्य–पुस्तक के रूप में हुई थी। अब तक हिन्दी क्षेत्र का मध्यवर्गीय पाठक इतना सक्षम नहीं हो पाया था, न ही हिन्दी का लेखक इतना सक्षम और सजग था, कि अंग्रेजी और बँगला से प्रेरणा ग्रहण कर उपन्यास की रचना करता। सरकारी सहायता से 'देवरानी–ठानी की कहानी' का लेखन और मुद्रण हुआ। बाद में इसी तरह की दो और पुस्तकें 'वामा शिक्षक' (1872) और 'भाग्यवती' (1877) लिखी गयीं। इनका मकसद था स्त्री–शिक्षा का विकास और आदर्श स्त्री–चरित्र की प्रस्तुति। स्त्री–उद्धार भारतीय नवजागरण का प्रमुख मुद्दा था जिसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति इन कथा पुस्तकों में हुई। संयोगवश यही इनके उपन्यास होने की पहचान बन गयी। मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण तो इनमें आनुसंगिक रूप में ही हुआ है। वस्तुतः इन रचनाओं के समय मध्यवर्गीय हिन्दी लेखक और पाठक वर्ग अभी अपनी निर्माण की प्रक्रिया में ही था। लेखकों का एक वर्ग बाबू हरिश्चन्द्र के नेतृत्व में निर्मित हो रहा था ; राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर राष्ट्रभाषा के रूप में 'निज भाषा' की उन्नति का जी तोड़ प्रयास चल रहा था। इन लेखकों के सपने के भारत को एक समृद्ध गद्य–भाषा की आवश्यकता थी, जो खड़ी बोली हिन्दी के रूप में ही सम्भव थी। अतः बाबू हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियों को निर्णय लेने में विलम्ब नहीं हुआ और उन्होंने खड़ी बोली गद्य को समृद्ध करने का बीड़ा उठा लिया। जब भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने पहली बार (1875) उपन्यास पद का प्रयोग किया या 'एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती' लिखने का प्रयोग किया उस समय उन्हें कदाचित् इस बात का ज्ञान नहीं था कि 'देवरानी जेठानी की कहानी' के रूप में उपन्यास का जन्म हो चुका है। भारतेन्दु के समय में ही, उनके सहयोगी बालकृष्ण भट्ट ने सायास रूप में उपन्यास लेखन का प्रयास आरम्भ किया (1878) यद्यपि तब भी उपन्यास के लिए जरूरी पाठक–वर्ग का निर्माण नहीं हो पाया था। भारतेन्दु काल के लेखकों ने मध्यवर्गीय पाठकों की माँग पर नहीं, बल्कि 'देशहित' से प्रेरित होकर, हिन्दी को समृद्ध बनाने के लिए, उपन्यास लिखे। इनमें से कई तो तुरन्त (या बाद में भी) प्रकाशित भी नहीं हो सके और जो प्रकाशित हुए उन्हें लेने वाला कोई नहीं था। अतः हिन्दी उपन्यास के उदय का सम्बन्ध मध्य वर्ग से न के बराबर ही माना जा सकता है।

4.6 कहानी के विकास में पत्र–पत्रिकाओं की भूमिका

'छोटी कहानी' के विकास के साथ पत्र–पत्रिकाओं का सम्बन्ध प्रायः अनिवार्य रूप से जुड़ा है। अमेरिका में छोटी कहानियाँ अधिकतर पहले पत्रिकाओं और समाचारपत्रों में ही प्रकाशित हुईं। इस तथ्य ने ब्रेट होर्ट, किप्लिंग, मार्क ट्वेन आदि की कहानियों में पत्रकारिता सुलभ स्थानीय चित्रण को प्रोत्साहित किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 1891–95 में अपनी लगभग 40 कहानियाँ स्वयं द्वारा सम्पादित 'साधना' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित की थीं। हिन्दी में शुरू में ऐसा नहीं हुआ। भारतेन्दु युग की साहित्यिक पत्रिकाओं में, जो प्रायः लेखकों द्वारा ही साहित्य–प्रेम की प्रेरणा से निकाली गयी थीं, धारावाहिक रूप में 'उपन्यास' का प्रकाशन तो होता था, पर स्वतन्त्र और स्वयं में पूर्ण 'उपाख्यान' जैसी रचनाओं के प्रकाशन का कोई प्रयास नहीं दिखाई पड़ता। 1891–1900 के दशक में प्रकाशित होने वाली प्रमुख व्यावसायिक पत्रिकाओं, 'हिन्दी बंगवासी' (बालमुकुन्द गुप्त), 'साहित्य लहरी' (देवकीनन्दन खत्री), 'जासूस' (गोपाल राम गहमरी), 'उपन्यास' (किशोरीलाल गोस्वामी) आदि में भी बड़े आकार की कथाएँ ही 'उपन्यास' के नाम पर धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हो रही थीं।

4.6.1 हिन्दी कहानी और 'सरस्वती'

आकार में 'छोटी' कथा का, तनिक बड़े पैमाने पर, प्रकाशन पहली बार 'सरस्वती' से ही शुरू हुआ। 'सरस्वती' हिन्दी की एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान से निकलने वाली पहली साहित्यिक पत्रिका थी, जिसका लक्ष्य धन कमाना भले न हो, आर्थिक नुकसान उठाना भी न था। ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए 'कथा' से बढ़कर कोई और माध्यम नहीं हो सकता, इसकी जानकारी इंडियन प्रेस के बंगाली मालिक को भलीभाँति थी। बँगला में 'प्रवासी', 'साधना' आदि पत्रिकाओं की सफलता का रहस्य वे जानते थे। हिन्दी में भी देवकीनन्दन खत्री, गोपाल राम गहमरी, किशोरीलाल गोस्वामी आदि के 'उपन्यासों' के कारण एक कथाप्रेमी पाठक–वर्ग का उदय हो रहा था, इसकी जानकारी भी उन्हें थी। 'सरस्वती' इन्हीं सब परिस्थितियों की उपज थी। यही कारण था कि 'सरस्वती' के पहले ही अंक से 'आख्यायिका' नाम से छोटी कथाओं का प्रकाशन आरम्भ हो गया। यह भी एक रोचक तथ्य है कि 'उपन्यास' की तरह इन छोटी कथाओं के लिए बँगला में प्रचलित पद 'छोटो गल्प' या 'गल्प' पद नहीं अपनाया गया, जबकि पत्रिका के स्वामी बंगाली थे। 'आख्यायिका' पद के साथ एक सुविधा यह थी कि उसका परम्परागत सम्बन्ध 'ख्यात कथा' से था, जिसकी रचना आसान भी थी और शासन की टेढ़ी नजर से बचने का परदा भी। 'सरस्वती' के पहले ही अंक मे प्रकाशित गोस्वामी जी की 'इन्दुमती' और 1902 में प्रकाशित 'गुलबहार' 'ख्यात' कथा पर ही आधारित 'आख्यायिकाएँ' हैं।

1903 में 'सरस्वती' के सम्पादक पद पर नियुक्त महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रकाशित कथाएँ भी 'ख्यात' की कोटि में ही आती हैं। इन 'ख्यात' कथाओं के साथ–साथ 'कल्पनाप्रसूत' कथाएँ भी 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। 1900 ई. में ही 'सरस्वती' में' प्रकाशित केशव प्रसाद सिंह कृत 'चन्द्रलोक की यात्रा', 'कश्मीर यात्रा' और 'आपत्तियों का पर्वत' नामक कथाएँ कल्पनाप्रसूत ही थीं, यद्यपि वैज्ञानिक चेतना और यात्रा पर आधारित तथा 'राजनीतिक स्वतन्त्रता' और समाज–सुधार के उल्लेख के कारण उनमें आधुनिक छोटी कहानी की झलक अनायास ही आ गयी है। माधव प्रसाद मिश्र कृत 'पुरोहित का आत्मत्याग', माधवराव सप्रे कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी', मास्टर भगवान दास कृत 'प्लेग की चुड़ैल', गिरिजादत्त वाजपेयी कृत 'पंडित और पंडितानी', रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय', 'बंगमहिला' राजेन्द्रबाला घोष कृत 'कुम्भ में छोटी बहू' और 'दुलाई वाली' आदि कहानियाँ भी 'कल्पनाप्रसूत' की कोटि में ही आएँगीं। उर्दू की कथा–परम्परा से आने वाले नवाब राय ने भी 'ख्यात' और 'कल्पनाप्रसूत' दोनों ही प्रकार की कहानियाँ लिखीं। पर नाम इनका 'आख्यायिका' ही चलता रहा, केवल नवाबराय ने अपनी कहानियों के लिए 'कहानी' पद का प्रयोग किया। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में, हिन्दी में, आधुनिक कहानी, विकास के प्रथम चरण के रूप में अस्तित्व में आ गयी।

4.6.2 हिन्दी में 'छोटी कहानी' का उद्भव और प्रारम्भिक रूप

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दी क्षेत्र के लेखकों का जो थोड़ा बहुत सम्बन्ध यूरोपीय 'छोटी कहानी' से बना, वह बँगला और अंग्रेजी के माध्यम से ही। पहले 'सरस्वती' में और बाद में 'इन्दु', 'मर्यादा', 'माधुरी, 'विशाल भारत' आदि पत्रिकाओं में बँगला 'गल्पों' के अनुवाद और रूपान्तर प्रकाशित होते रहे। अंग्रेजी के माध्यम से तोल्सतोय, गोगोल, मोपासाँ, चेखव, ओ' हेनरी आदि की कतिपय प्रसिद्ध कहानियों के अनुवाद भी दूसरे–तीसरे दशकों की पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। इन सबसे हिन्दी के लेखक प्रेरित–प्रभावित

हुए। पर हिन्दी लेखकों को कहानी लिखने की प्रेरणा भले ही अंग्रेजी या बँगला से प्राप्त हुई हो, उनके सामने संस्कृत, प्राकृत, अपभंश और हिन्दी की कथा–आख्यान परम्परा का विशाल रिक्थ भी था।

संस्कृत से आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास का कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं है। खड़ी बोली आधारित हिन्दी गद्य का इतिहास भी बहुत पुराना और समृद्ध नहीं कहा जा सकता। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में मुद्रण यन्त्रों के बढ़ते उपयोग के फलस्वरूप परम्परा से चली आती मौखिक कथा को मुद्रित होने का लाभ मिला और पहली मौलिक गद्य कथा 'रानी केतकी की कहानी', जिसकी रचना 1803 के आसपास ही हो चुकी थी, 1841 के दशक में प्रथम बार मुद्रित हुई। इस बीच बहुत सी संस्कृत और फारसी परम्परा की कथाएँ भी अनूदित होकर हिन्दी में छपीं। पर 1900 के पूर्व, शाब्दिक अर्थ में भी, लघु कथाओं के प्रकाशन की कोई उल्लेखनीय परम्परा नहीं थी। 'रानी केतकी की कहानी' के शीर्षक में 'कहानी' पद होने पर भी यह आधुनिक 'कहानी' नहीं है, क्योंकि इसमें 'घटनाएँ' भी हैं और समयानुक्रम में निबद्ध घटनाओं की श्रृंखला भी। इंशा की दूसरी गद्य कथा 'सिल्के गौहर' भी 'कहानी' के रूप में स्वीकार नहीं की जा सकती। पूरी उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में मौलिक गद्य कथा का कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। डा. सादिक़ के अनुसार उर्दू में एक पृथक् गद्य–विधा के रूप में कहानी के प्रथम चिह्न उन्नीसवीं शताब्दी के पहले दशक में फोर्ट विलियम कॉलेज से सम्बद्ध लेखकों द्वारा तैयार की गयी पुस्तकों में मिलते हैं। इसके समर्थन में उन्होंने हैदर बख़्श हैदरी की प्रो इबादत बरेलवी द्वारा संकलित–सम्पादित 174 कहानियों के संकलन और 'भूमिका' में व्यक्त उनके इस विचार का उल्लेख किया है कि ''इन कहानियों में 'लघु कथा अथवा शार्ट स्टोरी की कलात्मक झलकियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।'' पर स्वयं सादिक़ प्रो. हैदरी के इस विचार से पूरा इत्तफ़ाक नहीं रखते। कम्पनी सरकार या ईसाई धर्मप्रचारकों द्वारा स्थापित प्राइमरी स्कूलों की पाठय–पुस्तकों में शामिल करने के उद्देश्य से लिखित कुछ लघु उपदेश–कथाओं के उदाहरण उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मिलने लगते हैं, पर उन्हें भी 'कहानी' के विकास से नहीं जोड़ा जा सकता। श्रीलाल लिखित धर्म सिंह का वृत्तान्त प्र.का. लगभग 1850 और सूरजपुर की कहानी प्र.का.1853 , राजा शिव प्रसाद रचित वीर सिंह का वृत्तान्त प्र.का.1855 , वामा मनरंजन प्र.का.1856 और लड़कों की कहानी (प्र.का. लगभग 1860 , पं. कृष्णदत्त लिखित बुद्धि फलोदय प्र.का. लगभग 1860 आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। वस्तुतः हिन्दी कहानी का आरम्भिक रूप बीसवीं सदी के प्रथम दशक कहानियों में ही देखा जा सकता है। 'इन्दुमती', 'गुलबहार', 'चन्द्रलोक की यात्रा', 'आपत्तियों का पर्वत', 'एक टोकरी भर मिट्टी', 'प्लेग की चुड़ैल', 'ग्यारह वर्ष का समय' आदि ऐसी ही कहानियाँ थीं।

4.7 सारांश

'हिन्दी कहानी' की परम्परा संस्कृत–प्राकृत कथा–साहित्य से जुड़ी हुई है। सातवीं सदी तक यह परम्परा अविछिन्न दिखायी पड़ती है। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' ने संस्कृत गद्य कथा को एक नया रूप दिया था। उसके बाद दंडी ने अपनी रचना 'दशकुमार चरित' द्वारा इस परम्परा को समृद्ध किया। पर बाणभट्ट और दंडी के बाद कथा–रचना की यह परम्परा आगे नहीं बढ़ पायी। उसके बाद, मध्यकाल में, इस परम्परा का विकास प्रायः क्षीण हो गया। 19वीं शताब्दी में, राजनीतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप हिन्दी (खड़ी बोली) गद्य और उसके साथ ही मुद्रण यन्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। कथा–साहित्य के विकास के लिए गद्य और उसके साथ साथ पाठक–वर्ग का विकास आवश्यक था।

हिन्दी गद्य और पाठक–वर्ग के निर्माण में मुद्रण–तकनीक के आगमन, शिक्षा के प्रसार, अदालती भाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकृति, समकालीन आर्थिक स्थिति, हिन्दी समाचारपत्रों के आगमन आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। जब 'कथा' गद्य में लिखी जाने लगी तो वह श्रव्य के साथ साथ पाठ्य होने लगी और जब मुद्रणयन्त्र का आगमन हुआ तो 'कथा' श्रव्य कम और पाठ्य अधिक होने लगी। धीरे–धीरे मुद्रण तकनीक के विकास के चलते पुस्तकें सस्ती और आसानी से उपलब्ध होने लगीं और 'कथा' अधिकतर पाठ्य हो चली। शिक्षा के प्रसार, आर्थिक स्थिति की बेहतरी आदि से पाठक–वर्ग का प्रसार होने लगा। पत्र–पत्रिकाएँ निकलने लगीं। भारत में इस प्रकार की परिस्थितियाँ औपनिवेशिक शासन के बाद निर्मित हुईं। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर लगभग आगामी सात दशकों तक हिन्दी पाठक वर्ग के निर्माण की प्रक्रिया बहुत धीमी रही।

आठवें दशक में हिन्दी साहित्य के इतिहास में नवजागरण का परिदृश्य उपस्थित हुआ, जिसके जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगी थे। इस नवजागरण की सबसे महत्त्वपूर्ण परिघटना हिन्दी में उपन्यास का उद्‌भव था। आधुनिक विधा के रूप में 'कहानी' का आरम्भ अभी नहीं हुआ था। बँगला में 'छोटो गल्प' के उदय, 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं के पत्रिका के प्रकाशन से हिन्दी 'कहानी' के उद्‌भव और विकास को गति मिली। जनवरी, 1900 में 'सरस्वती' के प्रथम अंक में ही प्रकाशित हिन्दी की पहली मानी जाने वाली कहानी, किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती', इसी का परिणाम थी। उसके बाद 'आख्यायिका' नाम से लगभग एक दर्जन कहानियाँ हिन्दी की तत्कालीन साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं।

अभ्यास

1. मध्यकाल में 'कथा'–लेखन की परम्परा का उल्लेख करते हुए हिन्दी कहानी के उद्‌भव के कारणों या परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
2. हिन्दी कहानी के उद्‌भव में गद्य के विकास की भूमिका का निरूपण कीजिए।
3. हिन्दी गद्य कथा के विकास में पाठक वर्ग की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
4. हिन्दी गद्य के विकास में मुद्रण तकनीक के आगमन का मूल्यांकन कीजिए।
5. हिन्दी पाठक वर्ग के विकास में स्कूली शिक्षा के योगदान पर विचार कीजिए।
6. हिन्दी गद्य के विकास में अदालतों में हिन्दी के प्रवेश के योगदान का उल्लेख कीजिए।
7. पाठक वर्ग के निर्माण और हिन्दी समाचारपत्रों के आरम्भ के परस्पर सम्बन्ध पर प्रकाश डालिए।
8. हिन्दी कहानी के विकास में पत्रिकाओं की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
9. सरस्वती और अन्य पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी कहानी के विकास का परिचय दीजिए।